International Journal of Humanities and Social Science Research
ISSN: 2455-2070; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 27-12-2020; Accepted: 20-01-2021; Published: 04-02-2021
www.socialsciencejournal.in
Volume 7; Issue 1; 2021; Page No. 97-101

भारतीय किसान आंदोलन की परंपरा

संदीप त्रिपाठी

पीएच.डी. (हिंदी), शोधार्थी, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखंड, भारत

सारांश

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था को चलाने में कृषि का उतना ही महत्वपूर्ण योगदान है जितना कि रेल को चलाने के लिए ट्रैक (पटरियों) का। लेकिन जिस तरह एक रेल बिना चालक के आगे नही बढ सकती उसी तरह कृषकों के योगदान के बिना कृषि हो पाने के ख्वाब देखना बिना जल के समुद्र में कश्ती चलाने के समान है। भारत एक कृषि प्रधान देश है और यहाँ पर लगभग 70 प्रतिशत लोग कृषक है। इतने बड़े देश की अर्थव्यवस्था को चलाने वाले अन्नदाता व किसान की आर्थिक,समाजिक, तथा मनोवैज्ञानिक स्थिति आजादी के 73 वर्षों बाद भी वैसी ही बनी हुई है, जैसे की आजादी से पूर्व थी। आज के वक्त में भी आत्मनिर्भर भारत के सपने को सच करने की जिद्द में लगे हुए अधिकतर कृषक, सरकार, पूंजीपतियों तथा साहूकारों के कर्ज के बोझ तले दबे हुए है। लेकिन आजादी के इतने वर्षों पश्चात भी कृषको के प्रति सरकार का गैर जिम्मेदाराना रवैया औपनिवेशिक सरकारों की तरह ही रहा है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद नाजाने कितनी ही सत्तासीन सरकार आयी और गयी लेकिन उनमें से किसी भी सरकार ने भारत के गरीब किसानों की सुध नहीं ली, समय समय पर किसानों को लोलीपॉप देते हुए कुछ अध्यादेश/क़ानून जरूर पारित किये गये लेकिन उन कानूनों का जमीनी स्तर पर लागू होना और किसानों तक उनका लाभ पहुँचना आज भी उतना दूर है जितना की आसमान से धरती। इस बात को कदाचित भी झुठलाया नही जा सकता है कि संघर्ष कृषक के जीवन का वो अभिन्न हिस्सा रहा है जिसके बिना कृषक जीवन की कल्पना करना अनुचित होगा। सम्पूर्ण जगत की तीन वक्त के भोजन की जरूरतों को पूरा करने वाला कृषक कब हाशिये पर आ पहुंचा इसकी कल्पना स्वयं कृषक ने कभी नही की थी। अधिकतर कृषक अपने अंधविश्वास, अशिक्षा,जागरूकता की कमी और अभावग्रस्त होने के कारण आज तक पिछड़े हुए है। समाज में अपनी एक आदर्श स्थिति बनाने के लिए कृषक समुदाय को अपने हक के लिए लड़ना आवश्यक है।

मूल शब्द: भारतीय कृषक, शोषण, औपनिवेशिक, अधिकार, आंदोलन, आदि।

प्रस्तावना

इतिहास गवाह है की सरकारी नीतियों,शोषण,कर्ज,आदि से पीड़ित कृषकों ने अपने लुप्त हो रहे वर्चस्व को जीवित रखने तथा कृषक वर्ग के साथ हो रही मनमानियों के खिलाफ समय समय पर अपनी हक की लड़ाई के लिए आवाज़ बुलंद की तथा सरकार को झुकने के लिए विवश किया है।

भारतीय कृषकों ने औपनिवेशिक ताकत के द्वारा हो रहे अत्याचार और शोषण के खिलाफ अपने अधिकारों की लड़ाई का आरम्भ किया था। लेकिन अगर इतिहास के पन्ने पलट कर देखें, तो पता चलेगा कि अपने ही देश में आजादी के पहले और आजादी के बाद कृषकों के समर्थन में नील किसानों का चंपारण सत्याग्रह, पाबना विद्रोह, तेभागा आंदोलन, खेड़ा आंदोलन और बारदोली आंदोलन कई ऐसे आंदोलन हुए है, इन आंदोलनों का नेतृत्व महात्मा गांधी, वल्लभभाई पटेल जैसे नेताओं ने किया। आमतौर पर किसानों के आंदोलन या उनके विद्रोह की शुरुआत सन् 1859 से मानी जाती है, लेकिन अंग्रेजों की नीतियों से सबसे ज्यादा किसान प्रभावित हुए, इसलिए आजादी के पहले भी औपनिवेशिक सरकार की इन नीतियों ने किसान आंदोलनों की नींव डाली। आजादी से पूर्व हुए आंदोलनों की बात करें, तो भारत में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के आंदोलन की शुरुआत चंपारण के नील किसान और गुजरात के खेड़ा के किसानों की समस्याओं से हुई। एक तरह से देखेंगे, तो बिहार के चंपारण के नील आंदोलन से ही महात्मा गांधी का भारत की आजादी की लड़ाई में पदार्पण भी हुआ। लेकिन आजादी से पूर्व गांधी के नेतृत्व में किसानों ने अपनी मांगों के समर्थन में जितने भी आंदोलन किए वे आजकल के आंदोलनों की तरह हिंसा और बर्बादी तथा राजनीतिक स्वार्थ से भरे हुए नहीं होते थे।[1]

सन् 1857 के विद्रोह के असफल होने के पश्चात् कृषकों ने ही विरोध का मोर्चा संभाला। वास्तव में जितने भी 'किसान आंदोलन' हुए, उनमें अधिकांश आंदोलन अंग्रेजों के खिलाफ थे। उस समय के समाचार पत्रों ने भी किसानों के शोषण, उनके साथ होने वाले सरकारी अधिकारियों की ज्यादतियों का सबसे बड़ा संघर्ष, पक्षपातपूर्ण व्यवहार और किसानों के संघर्ष को प्रमुखता से प्रकाशित किया।

नील विद्रोह

1857 की क्रांति के पश्चात् बंगाल के कृषको द्वारा किया गया यह सबसे पहला संगठित विद्रोह था। जिसकी शुरुआत 1859 में की गयी थी। अंग्रेज अधिकारी बंगाल व बिहार के रैय्यतों से भूमि लेकर बिना पैसे दिये ही रैय्यतों को नील की खेती करने को मजबूर करते थे, जबकि कृषकों अपनी उपजाऊ जमीन पर चावल की खेती करना चाहते थे। इस विद्रोह के आरम्भ में नदिया जिले के कृषकों ने 1859 के फरवरी-मार्च में नील का एक भी बीज बोने से मना कर दिया था। यह आन्दोलन पूरी तरह से अहिंसक था तथा इसमें भारत के हिन्दू और मुसलमान दोनो ने बराबर का हिस्सा लिया। नील की खेती करने से इंकार करने वाले कृषकों को नील बागान मालिकों के दमनचक्र का भी सामना करना पड़ा था। नील विद्रोह की सबसे पहली घटना बंगाल के नदिया जिले में स्थित गोविंदपुर गांव में सितंबर,1859 में हुई थी। जिसके बाद स्थानीय नेता दिगंबर विश्वास और विष्णु विश्वास के

नेतृत्व में कृषकों ने नील की खेती बंद कर दी। 1860 तक यह आंदोलन नदिया,पावना,खुलना,ढाका,मालदा,दीनाजपुर आदि क्षेत्रों में फैल गया था। कृषकों की एकजुटता के कारण बंगाल में 1860 तक सभी नील कारखाने बंद हो गये।[2]

नील का दाग

महात्मा गांधी ने अपनी किताब सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा में चम्पारण के एक किसान राजकुमार शुक्ल का जिक्र किया और लिखा कि जिस तरह चंपारण में आम के वन है, उसी तरह सन 1917 में वहाँ नील के खेत थे। चंपारण के किसान अपनी ही ज़मीन के 3/20 भाग में नील की खेती उसके असल मालिकों के लिए करने को क़ानून बंधे हुए थे। इसे वहाँ "तीन कठिया" कहा जाता था। तीन कट्ठे ज़मीन में नील बोने की पर्थ को "तीन कठीया" कहते थे। जिसके कारण हजारों कृषकों को कष्ट भोगना पड़ता है इसी कारण उनके भीतर नील के इस दाग से सब कृषकों को छुटकारा दिलाने की इच्छा जागृत हुई थी।[3]

बांग्ला नाटककार दीनबंधु मित्र ने भी अपने नाटक "नील दर्पण" में बंगाल में नील की खेती करने वाले भारतीय कृषकों के ऊपर हो रहे अंग्रेजों के शोषण और अमानुषिक अत्यचारों की बड़ी भावपूर्ण अभिव्यक्ति की है। नाटक के प्रथम अंक में पात्र गोलोकचन्द्र, नवीनमाधव तथा साधुचरण के बीच का निम्न संवाद उनकी पीड़ा को बयाँ करने के लिए काफी है।

साधुचरण: अब तो सुख की जगह ही नहीं रही। आपका बगीचा तो गया ही,जमीन-जायदाद भी जाऊं-जाऊं हो रही है! अरे! तीन बरस भी तो नही हुए साहब को ठेका लिये, इसी बीच गाँव बर्बाद कर डाला।

नवीनमाधव: जी, माता के दुःख की कहानी सुनाने से क्या कला सांप गोद के बच्चे को डसना छोड़ देता है?मैंने बहुत कुछ कहा सुना,पर उसकी कुछ समझ में न आया। साहब को एक ही रट है। कहता है, पचास रूपये लेकर साथ बीघे नील की लिखा-पढ़ी कर दो। बाद में दो बरस का हिसाब एक साथ चूका दिया जायेगा।

गोलोकचन्द्र: बीघे नील करने पर दूसरी खेती पर हाथ भी न लगा सकोगे। भूखो मरना पड़ेगा।

नवीनमाधव: मैंने कहा,साहब हम लोगों के नौकर-चाकर,हल-बैल, सब आप नील की जमीन में लगा लीजिए। बीएस हमें बरस भर रोटी खिला दीजियेगा। हम वेतन नही चाहते। इस पर हँसी उड़ाता हुआ बोला,तुम लोग तो म्लेच्छ का भात नही खाते।[4]

नील आयोग का गठन (31 मार्च, 1860 ई.)

1860 में नील आयोग के सुझाव पर जारी की गई सरकारी अधिसूचना जिसमें उल्लेख था कि रैय्यतों को नील की खेती करने के लिए बाध्य नहीं किया जाये तथा यह सुनिश्चित किया जाये कि सभी प्रकार के विवादों का निपटारा कानूनी तरीके से किया जाये। इसका आंदोलन पर गहरा प्रभाव पडा, जिससे आंदोलनकारियों को एक बडी सफलता मिली।[5]

पबना विद्रोह (1873 -76)

बंगाल में ज़मींदारों के द्वारा कृषको पर क़ानूनी सीमा से बहुत अधिक करारोपण किया जाता था और मनमानी कारगुजारियां बड़े पैमाने पर किया जाता था। इसके विरोध में 1873 -76 के बीच में कृषकों का आंदोलन हुआ जिसे पबना विद्रोह के नाम से जाना जाता है। पबना जिले के यूसुफ़शाही परगने में 1873 में कृषक संघ कि स्थापना की गई। इस संघ के अधीन कृषक संगठित हुए और उन्होंने लगान हड़ताल कर दी और बढ़ी हुई दर पर लगान देने से मना कर दिया। कृषको कि यह लड़ाई मुख्यतः क़ानूनी मोर्चे पर ही लड़ी गई थी। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, आनंद मोहन बोस और द्वारका नाथ गांगुली ने इंडियन एसोसिएशन के मंच से आंदोलनकारियों की मांग का समर्थन किया।[6]

दक्कन विद्रोह (1874-75)

कृषकों पर साहूकारों द्वारा हो रहे शोषण के कारण यह आंदोलन एक-दो स्थानों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि देश के कई भागों तक इसने अपने पैर पसार लिए थे। दक्षिण भारत के दक्कन से फैली यह आग महाराष्ट्र के पूना एवं अहमदनगर समेत देश के कई हिस्सों में फैल गई। वर्ष 1874 के दिसंबर में एक सूदखोर कालूराम ने किसान बाबा साहिब देशमुख के खिलाफ अदालत से घर की नीलामी की डिक्री प्राप्त कर ली। इस पर किसानों ने साहूकारों के विरुद्ध आंदोलन शुरू कर दिया। इन साहूकारों के विरुद्ध आंदोलन की शुरुआत वर्ष 1874 में शिरूर तालुका के करडाह गांव से हुई।[7]

महाराष्ट्र के पुणे और अहमदनगर (दक्कन) जिलों में किसानों ने साहूकारों के खिलाफ विद्रोह किया। 1867 में सरकार द्वारा लगान की दर में 50 प्रतिशत वृद्धि कर देने तथा कई वर्ष से लगातार फसल के खराब होने के कारण किसानों को लगान की अदायगी हेतु साहूकारों पर निर्भर होना पडा। दक्कनी साहूकारों में अधिकांश बाहरी मारवाडी तथा गुजराती थे जिनसे लगान अदायगी के लिए किसानों को कर्ज लेना होता था, कर्ज देने के बदले साहूकार किसानों के घर और जमीन को रेहन रखते थे, इस तरह किसान बिल्कुल महाजनों के चंगुल में होता था।[8]

मोपला विद्रोह (1920 ई.)

केरल के मालाबार क्षेत्र में मोपला किसानों द्वारा सन् 1920 में विद्रोह किया गया। प्रारम्भ में यह विद्रोह अंग्रेज़ हुकूमत के ख़िलाफ था। महात्मा गांधी, शौकत अली, मौलाना अबुल कलाम आजाद जैसे नेताओं का सहयोग इस आंदोलन को प्राप्त था। इस आन्दोलन के मुख्य नेता के रूप में 'अली मुसलियार' चर्चित थे। सन् 1920 में इस आन्दोलन ने हिन्दू-मुस्लिमों के मध्य साम्प्रदायिक आन्दोलन का रूप ले लिया।[9]

मुसलमानों के धार्मिक गुरु तथा स्थानीय नेता अली मुसलियार को गिरफ्तार करने के प्रयास में मस्जिदों पर छापे मारे गये, परिणाम स्वरूप पुलिस को विद्रोहियों के आक्रामक तेवर का सामना करना पडा, कई विद्रोही मारे गये। मोपला विद्रोह की उग्रता को देखते हुए सरकार ने सैनिक शासन की घोषणा कर दी, परिणामस्वरूप मोपला विद्रोह को कुचल दिया गया।[10]

20 वीं शताब्दी में कृषक आंदोलन

20 वीं शताब्दी में हुए कृषक विद्रोह, उन्नसवीं शताब्दी के विद्रोहों से अधिक व्यापक, प्रभावी, संगठित व सफल थे। क्योंकि इन आंदोलनों ने भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष की लड़ाई में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

उत्तर प्रदेश में कृषकों का एका आंदोलन

होमरूल लीग के कार्यकताओं के प्रयास तथा मदन मोहन मालवीय के दिशा-निर्देश में फरवरी1918 में उत्तर प्रदेश में 'कृषक सभा' का गठन किया

गया। वर्ष 1919 के अंतिम दिनों में किसानों का संगठित विद्रोह खुलकर सामने आया। इनसे जुड़े कुछ और प्रमुख नेता थे-झिंगुरी सिंह ,दुर्गापाल सिंह,बाबा रामचंद्र,जवाहर लाल नेहरू आदि। इसकी लगभग 500 शाखाएं खोली गई। राष्ट्रवादी नेताओं में मतभेद के कारण अक्टूबर 1920 में अवध किसान सभा का गठन किया गया। अवध किसान सभा ने किसानों को बेदखल जमीन न जोतने और बेगार न करने की अपील की। इस संगठन को जवाहरलाल नेहरू ने अपने सहयोग से शक्ति प्रदान की। उत्तर प्रदेश के हरदोई, बहराइच एवं सीतापुर जिलों में लगान में वृद्धि एवं उपज के रूप में लगान वसूली को लेकर अवध के किसानों ने 'एका आंदोलन' नामक आंदोलन चलाया।

उच्च लगान दर,राजस्व वसूली में जमींदारों के द्वारा अपनाई गई दमनकारी नीतियों, तथा बेगार की प्रथा के खिलाफ 1921 में उत्तर प्रदेश के उत्तरी जिलों हरदोई ,बहराइच तथा सीतापुर में किसान एकजुट होकर आंदोलन पर उतर आए।[11]

इस एका आंदोलन में किसानों को प्रतीकात्मक धार्मिक रीति रिवाज़ों का पालन करने का निर्देश दिया जाता था। इस आंदोलन का नेतृत्व निचले तबके के किसानों – मदारी पासी आदि ने किया।

खेडा सत्याग्रह

खेड़ा सत्याग्रह गुजरात के खेड़ा जिले में किसानों का अंग्रेज सरकार की कर-वसूली के विरुद्ध एक सत्याग्रह (आन्दोलन) इसे प्रथम असहयोग आंदोलन भी कहा जाता है। इस विषय पर अमृतलाल ठक्कर द्वारा एक जांच रिपोर्ट भी तैयार की गयी थी। इन दिनों गांधी जी गुजरात-सभा के सभापति थे। 1918 में गुजरात जिले की पूरे साल की फसल मारी गई। किसानों की दृष्टि में फसल चौथाई भी नहीं हुई थी। स्थिति को देखते हुए लगान की माफी होनी चाहिए थी, पर सरकारी अधिकारी किसानों की इस बात को सुनने को तैयार न थे। अपने साथियों से परमर्श करने के पश्चात गांधी जी ने सत्याग्रह करने की सलाह दी। इस सत्याग्रह में उनके साथ श्री वल्लभभाई पटेल, शंकर लाल बैकर, अनसूयाबहन, इन्दुलाल कन्हैया याज्ञिक, तथा महादेव देसाई आदि थे।

महात्मा गांधी द्वारा लिखित सत्य के प्रयोग तथा आत्मकथा में उन्होंने कृषकों के संघर्ष के लिखा है की, गाँव में फसल चार आने कम होने के कारण उन्होंने सरकार से लगान वसूली के लिए दरख्वास्त की लेकिन सरकार ने उनकी एक न सुनी। तो ऐसे में कृषकों ने प्रतिज्ञा ली की सर्कार जो भी क़ानूनी कार्यवाही करना चाहे कर ले लेकिन कोई भी किसान सरकार को लगान नही देगा। वो कृषकों को जितना प्रताड़ित करना चाहते हैं कर ले हम उनके अत्याचार सहन करेंगे। अगर हमारी जमीन खालसा की गयी तो हम खालसा होने देंगे। पर अपना स्वाभिमान नही खोयेंगे।[12]

कूका विद्रोह

पंजाब में 1871 – 72 में कूका लोगों (नामधारी सिखों) द्वारा एक सशस्त्र विद्रोह किया गया था। कृषि संबंधी समस्याओं के खिलाफ अंग्रेज़ सरकार से लड़ने के लिए बनाए गए इस संगठन के संस्थापक भगत जवाहरमल थे। सन् 1872 में इनके शिष्य बाबा रामसिंह ने अंग्रेजों का कड़ाई से सामना किया। जिसके पश्चात उन्हें कैद कर रंगून (अब यांगून) भेज दिया गया, जहां पर सन् 1885 में उनकी मृत्यु हो गई थी। अंग्रेजों की नीतियों के खिलाफ कूका लोगों ने पूरे पंजाब को बाईस जिलों में बाँटकर अपनी एक सरकार बना ली थी। जिससे विद्रोह भड़क उठा और अंग्रेजों द्वारा वह आन्दोलन दबा भी दिया गया। सिखों के नामधारी संप्रदाय के लोग कूका भी कहलाते हैं। इस पन्थ का आरम्भ 1840 ईस्वी में हुआ था। इसे प्रारम्भ करने का श्रेय सेन साहब अर्थात भगत जवाहर मल को जाता है। कूका विद्रोह के दौरान 66 नामधारी सिख शहीद हो गए थे। नामधारी सिखों की कुर्बानियों को भारत की आजादी की लड़ाई के इतिहास में 'कूका लहर' के नाम से अंकित किया गया है।[13]

रामोसी किसानों का विद्रोह

कूका आन्दोलन की तरह ही महाराष्ट्र में वासुदेव बलवंत फड़के के नेतृत्व में रमोसी किसानों ने ज़मींदारों के अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह किया था। आंध्रप्रदेश में सीताराम राजू के नेतृत्व में औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध यह विद्रोह हुआ, जो सन् 1879 से लेकर सन् 1920-22 तक छिटपुट ढंग से चलता रहा।[14]

ताना भगत आन्दोलन

1914 में बिहार में लगान की ऊची दर तथा चौकीदारी कर के विरुद्ध एक और आन्दोलन की शुरुआत 1914 ई. में हुई। इस आन्दोलन के प्रवर्तक 'जतरा भगत' थे। 'मुण्डा आन्दोलन' की समाप्ति के करीब 13 वर्ष बाद 'ताना भगत आन्दोलन' शुरू हुआ। यह ऐसा धार्मिक आन्दोलन था। यह एक ऐसा धार्मिक आन्दोलन था, जिसके अपने जिसके राजनीतिक लक्ष्य थे। यह आदिवासी जनता को संगठित करने के लिए नये 'पंथ' के निर्माण का आन्दोलन था। इस मायने में यह बिरसा मुण्डा आन्दोलन का ही विस्तार था। मुक्ति-संघर्ष के क्रम में बिरसा मुण्डा ने जनजातीय पंथ की स्थापना के लिए सामुदायिकता के आदर्श और मानदंड निर्धारित किये थे।[15]

बंगाल का तेभागा आन्दोलन

1946 का तेभागा आन्दोलन किसान आन्दोलनों के इतिहास का सर्वाधिक सशक्त आन्दोलन था।इस आन्दोलन में किसानों ने 'फ्लाइड कमीशन' की सिफारिश के अनुरूप लगान की दर घटाकर एक तिहाई करने के लिए संघर्ष शुरू किया था। मुख्य रूप से यह आन्दोलन जोतदारों के विरुद्ध बंटाईदारों का आन्दोलन था। इस आन्दोलन के महत्त्वपूर्ण नेता 'कम्पाराम सिंह' एवं 'भवन सिंह' थे।बंगाल का 'तेभागा आंदोलन' फसल का दो-तिहाई हिस्सा उत्पीड़ित बटाईदार किसानों को दिलाने के लिए किया गया था। यह बंगाल के 28 में से 15 जिलों में फैला, विशेषकर उत्तरी और तटवर्ती सुन्दरबन क्षेत्रों में। 'किसान सभा' के आह्वान पर लड़े गए इस आंदोलन में लगभग 50 लाख किसानों ने भाग लिया और इसे खेतिहर मजदूरों का भी व्यापक समर्थन प्राप्त हुआ।[16]

आंध्रप्रदेश का तेलंगाना आन्दोलन

1946 में ज़मींदारों एवं साहूकारों के शोषण की नीतियों तथा भ्रष्ट अधिकारियों के अत्याचार के विरुद्ध इस आंदोलन की शुरुआत की गयी थी। 1858 के पश्चात हुए कृषक आंदोलनों का तरीका, पूर्व हुएं आन्दोलन से बिलकुल अलग था अलग था। अब किसान बगैर किसी मध्यस्थ के स्वयं ही अपनी लड़ाई लड़ने लगे। इनकी अधिकांश माँगे आर्थिक होती थीं। किसान आन्दोलन ने राजनीतिक शक्ति के अभाव में ब्रिटिश उपनिवेश का विरोध नहीं किया। किसानों की लड़ाई के पीछे उद्देश्य व्यवस्था-परिवर्तन नहीं था। इन आन्दोलनों की असफलता के पीछे किसी ठोस विचारधारा, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक कार्यक्रमों का अभाव था।[17]

बिजोलिया किसान आन्दोलन

मशहूर क्रांतिकारी विजय सिंह पथिक के नेतृत्व में चलाया गया यह 'कृषक आन्दोलन' भारतभर में प्रसिद्ध रहा था। यह मेवाड़ राज्य के किसानों द्वारा 1897 ई शुरू किया गया था। कृषकों पर अत्यधिक लगान लगाये जाने के विरुद्ध किया गया यह आन्दोलन बिजोलिया जागीर से आरम्भ होकर धीरे - धीरे आसपास के जागीरों में भी फैल गया। इसका नेतृत्व विभिन्न समयों पर विभिन्न लोगों ने किया, जिनमें सीताराम दास, विजय सिंह पथिक और माणिक्यलाल वर्मा के नाम उल्लेखनीय हैं। यह आन्दोलन लगभग आधी शताब्दी तक चला और 1941 में समाप्त हुआ। यह आंदोलन धाकड़ जाति के किसानों द्वारा शुरू किया गया था। इस आन्दोलन में कृषको ने जिस प्रकार त्याग और बलिदान की भावना प्रस्तुत की तथा निरंकुश नौकरशाही एवं स्वेच्छाचारी सामंतों का संगठित होकर मुकाबला किया, वह इतिहास बन गया।[18]

अखिल भारतीय किसान सभा (1936 ई.)

1923 स्वामी सहजानंद सरस्वती के नेतृत्व में बिहार में किसान सभा आंदोलन की शुरूआत हुई, जिसने 1929 में बिहार प्रांतीय किसान सभा (बीपीकेएस) में अपने कब्जे के अधिकारों पर ज़मीनदार हमलों के खिलाफ किसानों की शिकायतों को इकट्ठा करने के लिए गठित किया था। 1928 ई. में 'आंध्र प्रान्तीय रैय्यत सभा' की स्थापना एन.जी. रंगा ने की। उड़ीसा में मालती चैधरी ने 'उत्तकल प्रान्तीय किसान सभा' की स्थापना की। बंगाल में 'टेंनेंसी एक्ट' को लेकर अकरम ख़ाँ, अब्दुर्रहीम, फ़जलुलहक, के प्रयासों से 1929 ई. में 'कृषक प्रजा पार्टी' की स्थापना हुई। अप्रैल, 1935 ई. में संयुक्त प्रान्त में किसान संघ की स्थापना हुई। इसी वर्ष एन.जी. रंगा एवं अन्य कृषक नेताओं ने सभी प्रान्तीय किसान सभाओं को मिलाकर एक 'अखिल भारतीय किसान संगठन' बनाने की योजना बनाई। इस प्रकार भारत में किसानों की गतिविधियों ने सबको चकित कर दिया था।

बारदोली सत्याग्रह (1920 ई.)

यह आंदोलन औपनिवेशिक सरकार द्वारा बढाये गए 30 प्रतिशत लगान के विरोध में चलाया गया था। बारदोली के 'मेड़ता बन्धुओं' (कल्याण जी और कुंवर जी) तथा दयाल जी ने किसानों के समर्थन में 1922 में यह आन्दोलन चलाया था। जिसके पश्चात् 4 फरवरी 1928 में वल्लभ भाई पटेल ने बारदोली किसान सत्याग्रह का नेतृत्व संभाला। सर्वप्रथम वल्लभभाई द्वारा बढ़ी हुई लगान के विरुद्ध सरकार को पत्र लिखा गया, किन्तु सरकार द्वारा कुछ सकारात्मक उत्तर नहीं मिला। परिणामस्वरूप पटेल ने किसानों को संगठित किया तथा उन्हें लगान न अदा करने के लिए कहा। वल्लभ भाई पटेल ने इस लगान वृद्धि का जमकर विरोध किया। ब्रिटिश हुकूमत वाली सरकार ने इस सत्याग्रह को कुचलने के लिए कई बड़े कदम उठाए। मगर वल्लभ भाई पटेल की दृढ़ता के आगे अंग्रेजी सरकार लाचार हो गई और अंततः विवश होकर कृषकों की मांगों को मानना पड़ा। दो अधिकारियों की जांच के बाद ब्रिटिश हुकूमत ने 30 फीसदी लगान को गलत माना और उसे घटाकर 6 फीसदी कर दिया। इसी आंदोलन के बाद वल्लभ भाई पटेल को 'सरदार' नाम मिला।[19]

कृषक (सशक्तिकरण एवं संरक्षण) कीमत आश्वासन और कृषि सेवा पर करार विधेयक-2020

यह कृषि बिल 5 जून, 2020 को अध्यादेश के रूप में विधेयक रखा गया था। जिसे केंद्रीय कृषि मंत्री श्री नरेंद्र सिंह तोमर द्वारा 14 सितंबर, 2020 को यह बिल लोकसभा में प्रस्तुत किया। इस बिल का मुख्य उद्देश्य कृषि उपज व्यापार एवं वाणिज्य को सरलीकरण करना था। जो लोकसभा में 17 सितंबर 2020 को पारित किया गया। सरकार द्वारा इस कृषि बिल को सार्वजनिक करने के बाद पंजाब में छोटे पैमाने पर विरोध की लहर दौड़ने लगी। तथा धीरे धीरे भारत भर के किसान और खेत संघ सुधारों इस विरोध में शामिल हो गए थे। और पूरे भारत के फार्म यूनियनों ने 25 सितंबर 2020 को इन कृषि कानूनों के विरोध में भारत बंद (राष्ट्रव्यापी बंद) का आह्वान किया।

इस बिल को लेकर केंद्र सरकार तथा किसानों की अपनी अलग अलग राय है। जहां एक और सरकार का कहना है कि ये नया क़ानून किसानों के हित की बात करता है क्योंकि अब किसान अपनी फ़सलें निजी कम्पनियों को बेच सकेंगे और ज़्यादा पैसे कमा सकेंगे। वहीँ दूसरी और किसान संगठनों का इस बिल को लेकर कहना है कि उन्हें जो चाहिए था वो नए क़ानून में है ही नहीं।

सरकार द्वारा पारित किये गए तीन क़ानूनों में किये गये प्रावधान

1. **द फ़ार्मर्स प्रोड्यूस ट्रेड एंड कॉमर्स (प्रमोशन एंड फ़ैसिलिटेशन), 2020:** क़ानून के मुताबिक़, किसान अपनी उपज एपीएमसी यानी एग्रीक्लचर प्रोड्यूस मार्केट कमिटी की ओर से अधिसूचित मण्डियों से बाहर बिना दूसरे राज्यों का टैक्स दिए बेच सकते हैं।
2. **दूसरा क़ानून है - फ़ार्मर्स (एम्पावरमेंट एंड प्रोटेक्शन) एग्रीमेंट ऑन प्राइस एश्योरेंस एंड फ़ार्म सर्विस क़ानून, 2020:** इसके अनुसार, किसान अनुबंध वाली खेती कर सकते हैं और सीधे उसकी मार्केटिंग कर सकते हैं।
3. **तीसरा क़ानून है - इसेंशियल कमोडिटीज़ (एमेंडमेंट) क़ानून, 2020:** इसमें उत्पादन, स्टोरेज के अलावा अनाज, दाल, खाने का तेल, प्याज की बिक्री को असाधारण परिस्थितियों को छोड़कर नियंत्रण-मुक्त कर दिया गया है। [20]

सरकार इस बिल को लेकर अपना बचाव करती आई है तथा दूसरी और विरोध की लहर शांत होने का नाम ही नही ले रही है। कई राजनितिक पार्टी के नेता तथा किसान यूनियन लगातार इस क़ानून में संशोधन करने ली बात कहते आ रहे है।

निष्कर्ष

इस बात को कतई भी झुठलाया नही जा सकता की भारत में कृषक आंदोलनों का इतिहास बहुत पुराना है। दरअसल औपनिवेशिक सरकार से लेकर वर्तमान तक किसानों द्वारा समय समय में अपने हक को पाने तथा कृषि नीतियों में परिवर्तन के लिए अलग अलग तरीकों से विरोध प्रदर्शन किया है। स्वतंत्रता से पूर्व अधिकतर आन्दोलन औपनिवेशिक सरकार द्वारा भारतीयों पर किये जा रहें अत्याचारों,शोषण तथा स्वार्थी नीतियों के खिलाफ किये गये, उनमे से ज्यादातर आंदोलनों ने स्वतन्त्रता संग्राम का रूप ले लिया। इनमें से अधिकतर आंदोलनों का संचालन महात्मा गांधी तथा वल्लभभाई पटेल आदि जैसे नेताओं ने किया था। जिसके पश्चात् इनको और अधिक ख्याति प्राप्त हुई। लेकिन गुजरते वक्त के साथ धीरे धीरे आंदोलनों का चरित्र भी बदलता गया। तेलंगाना आन्दोलन के वक्त तक कृषक अपने साथ हो रहे अन्याय की लड़ाई स्वयं लड़ने लगे थे। अब उन्हें किसी अन्य व्यक्ति (मध्यस्थ) की जरूरत नही होती थी। 1923 में स्वामी सहजानंद सरस्वती के नेतृत्व में बिहार में किसान सभा आंदोलन के रूप में

कृषक आन्दोलन का एक नया रूप देखने को मिला। जिसने सबको चकित करके रख दिया था। इस तरह भारत में अन्नदाता कहे जाने वाले कृषकों ने स्वयं को सशक्त करने तथा अपने खो रहे अस्तित्व को जीवित रखने के लिए आंदलनों के जरिये अपनी दबी हुई आवाज़ को बुलंद किया है। लेकिन आज़ादी के इतने वर्षों पश्चात भी आज तक उनके हालातों में कोई अधिक परिवर्तन नहीं आया है। समस्त विश्व को अन्न प्रदान करने वाला किसान स्वयं अन्न के एक- एक दाने को मोहताज है। आलिशान बंगलों के ए. सी कमरों में बैठ कर किसानों के हित में क़ानून बनाने वाले पक्ष और विपक्ष के नेताओं को यह समझना जरूरी है कि अन्नदाता ही देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी है। जिनके बिना हम सब के अस्तित्व की कल्पना नही की जा सकती।

सन्दर्भ

1. https://www.prabhatkhabar.com/national/kisan-movement-in-india-kisano-ka-bada-andolan
2. https://www.indiaolddays.com/major-peasant-revolt-and-movement
3. सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा पेज 440
4. https://www.pustak.org/index.php/books/bookdetails/2916 नाटक-नील दर्पण, प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ, प्रकाशन वर्ष: 2006
5. https://www.indiaolddays.com/major-peasant-revolt-and-movement
6. https://iashindi.com/article/history/peasantsrevolts-1857-1947/
7. https://www.prabhatkhabar.com/national/kisan-movement-in-india-kisano-ka-bada-andolan
8. https://www.indiaolddays.com/major-peasant-revolt-and-movement
9. https://hindi.webdunia.com/national-hindi-news/indian-kisan-movement-117060600076_1.html
10. https://www.indiaolddays.com/major-peasant-revolt-and-movement
11. https://iashindi.com/article/history/peasantsrevolts-1857-1947/
12. सत्य के प्रयोग तथा आत्मकथा page 473
13. ttps://www.hastakshep.com/the-tradition-of-peasant-movements-and-a-brief-history-of-peasant-movements/
14. https://www.hastakshep.com/the-tradition-of-peasant-movements-and-a-brief-history-of-peasant-movements/
15. https://bharatdiscovery.org/india
16. https://bharatdiscovery.org/india
17. https://bharatdiscovery.org/india
18. https://hi.wikipedia.org/wiki
19. https://www.jagran.com/blogs/politics/how-vallabhbhai-patel-became-sardar
20. https://www.bhaskar.com/db-original